भारत की सांस्कृति जीवन धारा–'सरस्वती'

डॉ0 सुधांशु शेखर सिंह

हिमवन्त–हिमालय का अस्तित्व जिस दिक्–काल में विद्यमान था, उसी दिक्–काल में सरस्वती तथा भारत का भी अस्तित्व था। दोनों का अस्त्वि 'अपां पृष्ट' पर आधृत था।[1] भू–विज्ञान के विशेषज्ञों का अभिमत है कि आज से लगभग 18 करोड़ वर्ष से भू–भौतिकी के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की प्रक्रिया हुई और साढे–तीन करोड़ वर्ष पूर्व हिमालय अस्तित्व में आया।[2] हिमालय ही सरस्वती का मूल उत्स तथा सृष्टि का प्रथम उत्सवन है।[3]

आपो–मयी आद्या–सृष्टिः

साम्प्रतिक विश्व के वैज्ञानिक आप (जल) के अन्वेषण में लोक–लोकान्तरों के अग्र से अग्रतर अभियानों में संलग्न है, क्योकि जल ही जीवन है। ध्यातव्य यह है कि निघण्टू में जल के शताधिक पर्यायी पद हैं।[4] इसी प्रकार अमरकोध में जल के सत्ताइस (27) पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख किया गया है।[5] आपः शब्छ सलिल (जल) अर्थ में सर्वज्ञात है। 'आपो हवाऽइदमग्रे सलिलमेवास' 'आपो वा इदमग्रेमहत्सलिलमासीत्' आदि तथा प्राणा वा आपः 'आपो वैप्राणः' तथा आपः=ब्रह्म[6], सर्वमाप्रम[7], अश्श्मन[8], सरस्वतीः, स्यन्दमानाः, निवेष्याः, कूप्याः, घृतात्मिकाः, मधतयाः ..... सम्भरति आदि सरस्वती के 'अपाम् पृष्ट्' है।

सृ–सृष्टि–क्रम :

आधुनिक वैज्ञानिक यह स्वीकार करते है कि जीव की उत्पत्ति सरिरम् = सलिलम् (आपः) से है। यजुर्वेद का कथन है कि सृष्टि का मूल उत्स 'आपो वा उत्सः' है। अवधेय यह है कि सृ, 1/919 गतौ (प) धातु से ही सृष्टि शब्द निर्मित है। 'सृ' का मूल अर्थ गत्यात्मकता है, इसी गति अर्थ में सृ को अन्य व्याकरण–ग्रन्थों और आचार्यों – क्षीरस्वामी, मैत्रायिणी, सायण, चान्द्र, व्याकरण, जैनेन्द्र व्याकरण, काशकृत्सन, करतल्त, शाकटायन, हेमचन्द्र, वोपदेव आदि व्याकरणाचार्यों ने माना है। 'सृ' से 'सर' शब्द की निष्पत्ति है, जिसका अर्थ प्रवाह, द्रुतगति, सरकना, चलना, भ्रमण करना, निर्वाह करना आदि होता है।[9] अवेस्ता में इसके लिए 'सरैति' शब्द प्रयुक्त है।[10] विशेष ध्यातव्य यह है कि 'संसार' शब्द की व्युत्पत्ति भी सृ सर से ही हुई है और 'जगत्' शब्द का मूल भी गम् धातु का गत्यर्थ भी यहाँ विद्यमान है। 'सृ' धातु से सृजन शब्द की व्युत्पत्ति है, जिससे 'अवसृजन्ति' शब्द का उल्लेख तथा 'सृजते' का उल्लेख में हुआ है। इसी 'सृ–सर' धातु से 'सरस्वती' शब्द भी निष्पत्र है, जो सल् गतौ धातु से सलिल = पानी अथ में उल्लेख ऋग्वेद[11] में प्राप्त है। सायण ने इस पर भाष्य करते हुए 'सलिल' शब्द के निर्माण में 'इलच' प्रत्यय का योग मानते हैं। क्योंकि सरस्वती में सृ + असुन + ङीप से सिद्ध है। क्योंकि आपः = सलिल से संयुक्त है, इसीलिए तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है कि सरस्वती का पृष्ट आपोमयी है, जो निरन्तर गतिमान है।

आप तथा 'उत्स' परस्पर सलिल = जल के पर्यायी–पद है – 'आपो वा इदमग्रे सलिलमेवाए'। व्याकरण के र–ल–यो अभेदः सूत्र में 'सरिरम्' शब्द एक ही है। 'सरिरम्' को ही में 'आपो वयि सरिरम् = सलिलम् कहा गया है। अर्थात् आदि सृष्टि की सर्जना आपः, सलिलम् और सरिरम् से गतिमान हुई। इसीलिए भारतीय संस्कृति की जीवन (जल) धारा (जल–प्रवाह) सरस्वती (आद्यासृष्टि) 'सर' ही सरस्वती है।

आद्या–सृष्टिः

वैश्विक जीव–तत्त्व की सृष्टि आपः = जल से प्रायः विज्ञान मानता है। संस्कृत में 'आपः' शब्द सदा बहुवचन में प्रयुक्त होता है और यह शब्द स्त्रीलिङग भी है–आपो देवीः प्रथमजः। देवियों को प्रायः माएँ कहा जाता है। मनुस्मृति के अनुसार स्वयंभू ने आपः की सृष्टि की–

''आपो 'नारा' इति प्रोक्ता, आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्व, तेन नारायणः स्मृतः।।''(1/10)

अर्थात् 'आपः' को 'नाराः' कहा जाता है। क्योंकि 'आपः' नर–सन्तान है। वे पर की पूर्व अयन है। इसीलिए उस ना को नारायण कहा जाता है। 'मनुस्मृति' ने आपः को नर का पूर्व–अयन कहकर यह भी संकेत कर दिया है कि नर की उत्पत्ति जिस नारा से होती है, वह जलीय–तत्त्व माता के गर्भसे प्रथक होने पर जब भू–माता पर अवतरित होता है, तब उसे माता अपने क्षीर–नीर से पालन करती है। बाइबिल के सृष्टि प्रकरण में परमात्मा के आत्मा को जलों पर गतिशील बताया गया है ind the spirit of God moved upon the face of the waters. अर्थात् ईश्वर का आत्मा जलों की सतह पर गतिशील था।

आपो देवीः या बुद्धियाँः

वेद में आपः के साथ 'महत्' शब्द का प्रयोग विचारणीय है। वेद में 'सप्त आपः प्रथमजः' को प्रथमो–प्रथमान् को द्रप्स जन्म देता है, उसी को आपः की प्रथम इन्द्रपान ऊर्मि कहा गया प्रतीत होता है, जिससे 'इले' पैदा करता है। 'इले' की शक्ति को वेद में प्रथम इन्द्रपान ऊर्मि कहा गया प्रतीत होता है, जिससे 'इला' शक्ति ही सहस्र भाग है, जो 'द्रप्स' में परिणित होकर 'सप्त–आपः' (सरस्वती आदि नदियों) को जन्म देकर 'सप्तहोत्राः' को सम्भव बनाता है। अतः यह स्पष्ट है कि 'इला' नामक बुद्धि से उत्पत्र ये सप्त आपः भी वे ही सात बुद्धियाँ (आध्यात्मिक शक्तियाँ) हैं, जिनमें प्रमुख हैं।

'इला' शब्द ही सलिल है जिसके मध्य से 'सप्त–आपः देवी' का उद्गम है। इसीलिए उसी सलिल को आपः का गर्भ भी कहा जाता है। सलिल को ही गतिशील ब्रह्म (ब्रह्म नत्) कहा जाता है, जिससे 'इला' नामक बुद्धि संयुक्त रहती है।12 इसी सलिल का नामा सप्तसैन्धव = सप्त आपः द्वारा पार करके इन्द्र (महान नारायण) निन्यानबे (99) नदियों की सृष्टि तक पहुँचता है और मनुष्यों तथा देवों के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। जब सरस्वती सहित सप्तसिन्धुओं के माध्यम से सलिल में परिणत होकर सर्वताति सृष्टि का रूप ग्रहण करती है अथवा सिन्धु–माता का सप्तथि–सरस्वती होना और सभी धाराओं = जलों का एक साथ पहुँचना ही सभी आपः को अपनी महिमा से अभिभूत कर लेता है–

''प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा, सरस्वती धरुणमायसी पूः।
प्रबाबधाना रथ्येव याति, विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः।।'' (ऋ0, 7/95/1)

आपः सलिल के सरस्वती, इला और भारती नाम से तीन पक्ष है। इन्हीं को तिस्त्रो देवीः भी कहा जाता है। सलिल एक युन्ज है। इस युन्ज को बुद्धि (धिषणा) और षष्टि अग्नि भी कहा जाता है। इसी आधार पर अदिति, भारती, इला तथा सरस्वती के रूप में तरल तीव्र बुद्धि का स्मरण किया जाता है–

त्वमग्ने। अदितिर् देव। दाशुषे, त्वं होता भारती वर्धसे गिरा।
त्वमिला शतहिमसि दक्षसे, त्वं वृत्रहा वसुपते। सरस्वती। (ऋ0, 2/1/11)

अदिति अर्थात् अद्वैत, अखण्ड और अव्याकृत रूप में सरस्वती, इला और भारती नाम से बुद्धि के तीनों पक्षों में व्याकृत होती है। मानव जीवन में यही बुद्धि–ज्ञान, क्रिया और भावना की शक्तियों में प्रगट होती है। यही तीनों शक्तियाँ वेद में क्रमशः सुन्दरी, सरस्वती, इला और भारती नाम से उल्लिखित हैं। इन तीनों को पवमान की 'मही' कहा गया है और उन्हें हमारे यज्ञ में आने के लिए आहूत किया गया है–

''भारती पवमानस्य सरस्वतीला मही।
इम नो यज्ञमा गमन् तिस्त्रों देवीः सुपेशसः।।'' (ऋ0, 9/5/8)

इस दृष्टि से सरस्वती का सम्बन्ध कर्मवाचक अपस से विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि वह 'अपसामपस्तमा' अर्थात् कर्मों में सर्वाधिक क्रियाशील कही जाती है। भारतीय का विशेषण 'विश्वतूर्ति भावनात्मक त्वरण का सूचक है। अतः भारती को बुद्धि की भावना पक्ष का प्रतीक माना गया प्रतीत होता है। भारती को वरुत्री (आवरण करने वाली) बुद्धि कहना भी भावना के सम्मोहक पक्ष की ओर ही इंगित करता है। भावना निःसन्देह मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ओत–प्रोत करके क्षणभर में उसके क्रिया और ज्ञान को भी प्रभावित कर देती है। 'इला' का विशेष सम्बन्ध संज्ञान अर्थात् ज्ञान शक्ति से है। ज्ञान–शक्ति को प्रायः प्रखर अग्नि के रूप में कल्पित किया जाता है, तदनुसार इला भी समिद्ध होती है, इसीलिए इला को मनुषस्य शासनी कहा जाता है, तो भी इसका अभिप्राय यही है कि मनुष्य के ऊपर क्रिया अथवा भावना की अपेक्षा ज्ञान–शक्ति–सरस्वती का ही शासन होना चाहिए और होता है।

भारती, इला और सरस्वती नामक तीनों प्रवृत्तियों के लिए प्रायः 'क्रतु' शब्द का प्रयोग होता है। ऋतु द्वारा 'चेतिष्ठ–आप' में सांस लेते हुए और बैठे हुए हंस की चिति से उपमा देना उचित समझा

जाता है। इसीलिए अपां–पृष्टं रूप में सरस्वती कला जगत में 'हंस' (पक्षी) के आसन पर आरुढ़ प्रदर्शित है।

भारतीः

वैदिक संहिताओं में 'भारती' शब्द ज्ञान, वाक् और भाषा के अर्थ में उल्लिखित है। इसी परम्परा के क्रम में 'अमर कोष' में लिखा है कि ''ब्राह्मी तु भाती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती''[13] अर्थात् ब्राह्मी, भारती, भाषा, गीः, वाक्, वाणी ओर सरस्वती शब्द पर्यायवाची हैं। भारत की संस्कृति 'भारत' है। क्योंकि सुदूर क्षेत्रों के जनों का परिचय उनकी भाषा–बोली से अनायास हो जाता है। भारत देश के वासी भारती–जनों की भाषा 'भारती' तथा भाषा की वाक्–देवी को भी 'भारती–सरस्वती' कहा गया है। भारत की सांस्कृतिक जीवन–धारा 'नमसकृति' की संस्कृति है, जिसका मूल आधार सांस्कारिक–प्रक्रियाओं की परिमार्जन शक्ति में सत्रिहित है। भारत की संस्कृति का वैशिष्ट्य लोक–जीवन में शुद्धिकरण, जल–प्रक्षालन–परिमार्जन द्वारा मान्य है, इसीलिए शुद्ध जल का प्रतीक सरस्वती और शुद्ध भाषा का प्रतीक भारती को पवित्र मान्य हुआ। भरत–जनों द्वारा यज्ञ सम्पादन का मूर्तन ही 'भारती–देवी' के रूप में हो गया। भारत देश के नामकरण में यह अभिधान 'होता' भारती के रूप में हमें वेदों के प्रारम्भिक स्तर में प्राप्त होता है–

''शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती'' (ऋ0, 1/142/9)

''होत्रा भारती वर्ध गिरा'' (ऋ0, 2/1/11)

''अवन्त्व स्मान्होत्रा भारती दक्षिणामि'' (ऋ0, 3/62/3)

कालान्तर में भरत–जन की अधिठात्री भाषा ज्ञान की भारती–देवी का रूपायन हुआ। भारतीय कला–क्षेत्र में ज्ञान की देवी सरस्वती का अंकन भाषा और ज्ञान के सभी संस्थानों के प्रतीक रूप में प्रचलन अद्यावधि विद्यमान है। ध्यातव्य तथ्य यह है कि भारती–देवी का विकास भारत माता की कल्पना से हुआ, जिसका उल्लेख ऋग्वेद के प्राथमिक स्तर पर ही 'माता पृथिवी महीयम्' तथा अथर्ववेद के पृथिवी सृक्त 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' में हुआ है। काल–प्रवाह से भाषा–ज्ञान की देवी 'भारती' का वितान सम्पूर्ण भारत की भौमिक विस्तार तक व्याप्त (वि–आप) हो गया। वैदिक संहिताओं के पूर्व वर्णित विवरणों से ज्ञात होता है कि इला (ऐल) सारस्वत और भारती नामक उपभाषाएँ विद्यमान थी। इसी सरस्वती और भारती को अनेकत्र वाक्–देवियों के रूप में आहवान किया गया–

''आ भारती भारतीभिः सजोषा–इला देवैः मनुष्येभिरग्नि
सरस्वती सारस्वतेभिः वाक् तिस्त्रो देवि वर्हिरेदं सदन्तु'' (ऋ0, 3/4/8, 17/28)

अर्थात् भारतीय–संघ के साथ भारती (ज्ञान और भाषा) आवे, देवों ओर मनुष्यों के साथ इला कुश का आसन ग्राहण करें। भारत देश की भाषा = वाक् = ज्ञान का नाम ही 'भारती' प्रचलित हुआ। वाक् के साथ भारती का सम्बन्ध वैदिक काल में हो गया था –'दैव्या होतारा प्रथमा सुवाध्णाभिमाना' के पश्चात् 'आनो यज्ञो भारती तयम्' भारती का आहवान किया गया। भाष्यकार सायण भाष्य करते हुए कहते है। कि भारती को – ''भरतस्य आदित्यस्य सम्बन्धिनी द्युस्थाना वाक्'' है वैदिक ब्रह्मी। ब्राह्मी की परम्परा आधुनिक कालीन सूब्रह्मण्यम भारती के प्रयोग से भारतीय जन गर्वोत्रत है।

भारती प्रजा या भारतीय जन इस भूमि पर यज्ञीय–अग्नि के प्रतीक से सरस्वती जैसे नदियों के तटों पर वेदियाँ (ज्ञान–शाखाएँ) रचता हुआ फैला–

''एवं त्वजनयद धिष्ण्यान् वेदोक्तारन् विविधान् बहून।
विचरन् विविधान् देशान् भ्रममाणस्तु तत्र वै।।'' (वनपर्व, पूना, 2/12/20)

इस प्रकार अपने लिए विविध भू–प्रदेशों में वेदोक्त विधि से वेदियाँ (धिष्ण्यान्=बुद्धियां) कल्पित करता हुआ, भारती का प्रवाह विस्तीर्ण हो गया। देश के अनेक भू–भाग 'सरःवती' नदियों के नमनीय चक्रमण के अन्तर्गत आ गए। जहाँ यज्ञ की वेदियाँ बनी, आर्यजन = भारती जन का जय–स्तम्भ स्थापित हो गया। 'पृथ्वी सूक्त' में भी इस तथ्य का उल्लेख किया गया है–

''यस्या वेदिगृहणन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्या वेदि परिगृहणन्तिः शुक्राआहुतयः पुरस्तात्।।
सानो भूमिर्वर्धयदवर्धमाना। (पृथ्वी सूक्त मं0 12)

विश्वकर्मा लोग जिस नदी तट पर अर्थात् सरस्वती नदी के तट पर यज्ञ का वितान, जहाँ वे (वेदि नये–नये ज्ञान अनुष्ठानों का केन्द्रीय भूमिका) रखते है, जिस पृथ्वी पर यज्ञ के पुण्य स्तम्भ ऊर्ध्व सथापित है, जो अग्नि–क्षेत्र के द्वारा चमकते रहते है, ऐसी मातृभूमि यज्ञों से सम्वर्धित होती हुई हमारा भी संवर्धन करती है। आद्या–सृष्टि के आद्य–भू–सत्रिवेश के समय राष्ट्र विस्तार की यही राष्ट्रीय युक्ति थी। संसरणीय सरिताओं के क्षेत्र में यही सरस्वती राष्ट्रीय संस्कृति की जननी और प्रतीक थी। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जन विंस्तार नदियों के कांठे में हुआ, नदी तटों के मार्ग–वेदि और यूपों से सज्जित हुए। अतएव नदियाँ सच्चे अर्थों में यज्ञ–वेदियों (ज्ञान–वेदियों) की माताएँ हुई–

''एता नद्यस्तु धिष्ण्यानां मातरो याः प्रकीर्तिताः।'' (वन पर्व, 2/2/24)

इस प्रकार समस्त भूमि भारती का व्यापक क्षेत्र बन गयी और यही भारती का क्षेत्र भारत कहलाया। सिन्धु, सरस्वती, गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी –इन सात महानदियों के उत्संग में भारती संस्कृति का विस्तार हुआ। प्रत्येक नदी प्रदेश एक पात्र था, उसमें राष्ट्रीय जन फैलने लगा और अपने संस्कृति की धारा से उसे भरने लगा। जब वह पात्र भर गया, तब भरत–अग्नि और भारती संस्कृति आगे बढ़ी और उसने नये प्रदेशों का निर्माण किया। सचमुच अपने देश की संस्कृति नदीमातृक है। नदियों ने ही भौतिक रूप में अपनी मिट्टी से ही भूमि का ताना–बाना करोड़ों वर्षों में तैयार किया। जब वह बन गया, तब उसके साथ जन का सम्पर्क होने लगा। जन विस्तार के लिए नदियों के नाड़ी–जाल का सूत्र भूमि पर फैला हुआ था, जैसे कोई सूत्रधार गृह–निर्माण के लिए अपना सूत्र छोड़ता है। सरस्वती नदी के विविध प्रवाह मार्ग तथा उसकी सहायिका लघु सरिताओं का जाल सूत्र विश्व की संस्कृति की प्रथम धात्री बनकर आज विश्व संस्कृति और सभ्यता की प्रथम काल रेखा बन गयी है।

संदर्भः

1. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1/7/5/5
2. अन्तस्सलिला सरस्वती, वैदिक सरस्वती नदी शोध संस्थान जयपुर, लेख–प्रो0 देवेन्द्र सिंह चौहान, पृ0 63, युगाब्द 5097
3. यजुर्वेद, 12/19, शतपथ ब्राह्मण, 6/7/4/4
4. लक्ष्मण स्वरूप, निघण्टु तथा निरुक्त, 1/12, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 1967
5. गोपथ, पूर्व, 1/2
7. शतपथ ब्राह्मण, 1/1/1/14
8. तत्रैव, 9/1/1/4
9. ऋग्वेद, 4/17/3
10. जूलियस पााकर्नी, वरग्लेसिन्दिस नोर्टरबुक इण्डोजर्मेनिशेन
11. ऋग्वेद, 10/29/3
12. अथर्ववेद, 8/9/3
13. अमरकोष, 1/6/1
14. वाजसनेयी संहिता